International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(5): 37-40

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(5): 37-40
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 08-07-2023
Accepted: 14-08-2023

डॉ॰ पुष्पेंद्र जोशी
सहायकाचार्य, संस्कृत एवं पालि विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, पंजाब, भारत

अनामिका
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग आर्य कॉलेज, लुधियाना, पंजाब, भारत

Corresponding Author:
डॉ॰ पुष्पेंद्र जोशी
सहायकाचार्य, संस्कृत एवं पालि विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, पंजाब, भारत

वर्तमान शिक्षा में दयानन्द चिन्तन की प्रासंगिकता

डॉ॰ पुष्पेंद्र जोशी, अनामिका

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2023.v9.i5a.2207

सारांश
आज आवश्यकता है भारतीय सभ्यता में स्थापित उच्चादर्शों एवं मूल्यों को समकालीन समस्याओं एवं चुनौतियों के संदर्भ में रखकर देखा जाए। विकास की वर्तमान प्रक्रिया ने समूचे प्राणिमात्र के अस्तित्व का संकट खड़ा कर दिया है। नैतिक संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों में गिरावट तथा पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन के ह्रास ने स्थिति को और अधिक गम्भीर बना दिया है। अकेलापन, सूनापन, व्यभिचार, नशाखोरी, स्वच्छंदता, तनाव, अवसाद से ग्रस्त जीवन तथा सामाजिक संघों की बढ़ती प्रवृत्तियाँ एवं घटनाएँ समुचित सामाजिक ताने बाने को ध्वस्त करती जा रही हैं। इसके परिणामस्वरूप भाव एवं भावनाएँ, मानवीय संबंध और संवेदनाएं भी दूषित होती जा रही हैं। इनसे लड़ने के लिए सबसे सशक्त अस्त्र है– शिक्षा।महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी शिक्षा को परिवर्तन का सशक्त माध्यम समझते हुए तत्कालीन शिक्षा पद्धति में कई परिवर्तन एवं परिवर्धन किए। महर्षि मनुष्य के जीवन में एवं भारतीय शिक्षा पद्धति में वेदों की महत्वपूर्ण भूमिका से भलीभांति अवगत थे इसीलिए उन्होंने अपनी शिक्षा पद्धति को वैदिक शिक्षा का सुदृढ़ आधार प्रदान किया। वैदिक शिक्षा पद्धति पर आधारित होने के कारण महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षा पद्धति लौकिक और पारलौकिक दोनों विधियों से मनुष्य की उन्नति का साधन बताती है। उनका मानना था कि बिना इंद्रिय संयम के मनुष्य के अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता। जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए जिन सदगुणों की आवश्यकता होती है महर्षि दयानन्द ने अपनी शिक्षा पद्धति में उन सभी गुणों का उल्लेख किया है। उन्होंने अपनी शिक्षा पद्धति के माध्यम से न केवल वेदो में वर्णित शिक्षा के उद्देश्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया बल्कि वैदिक शिक्षा पद्धति के आधार पर ही शिक्षा के पाठ्यक्रम को भी नियोजित किया। अतः उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राजनीतिक उथल पुथल में लुप्त होती जा रही प्राचीन वैदिक शिक्षा पद्धति को महर्षि दयानन्द ने पुनः जीवित करने का प्रयास किया। वह भारतीय शिक्षा का वही पुरातन स्वरूप पुनः लाना चाहते थे जिसको ग्रहण करके मनुष्य 'आर्य' बने और निज स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण हेतु तत्पर हो। आशा है वर्तमान संदर्भ में यह शोध–पत्र शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध होगा।

कूटशब्द : चिंतन, प्रासंगिकता, शिक्षा पद्धत, पुनरुत्थान

प्रस्तावना
कोई भी परिकल्पना युग के साथ, परिस्थितियों के संदर्भ में परिवर्तित होती रहती है। इस दृष्टि से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की भारतीय शिक्षा की नवीन रचना की परिकल्पना में भी आज अंतर आ जाना स्वाभाविक है। परन्तु उनका भारतीय शिक्षा की वर्तमान स्थिति का निदान आज भी उतना ही सटीक है क्योंकि उनकी सांस्कृतिक मूल्यों की अवधारणा मानव धर्म की व्यापक प्रतिष्ठा से संबंधित है।[1]

आज मानवता, नैतिक मूल्यों तथा राष्ट्र प्रेम की भावना में दिन–प्रतिदिन गिरते स्तर को देखकर शिक्षा शास्त्री चिंतित दिखाई पड़ते हैं और शिक्षा पद्धति में इनकी आवश्यकता पर बल देने लगे हैं। दयानन्द ने सवा शताब्दी पूर्व ही अपनी दूर–दृष्टि से इन मूल्यों की आवश्यकता अनुभव की थी और अपनी शिक्षा पद्धति के मुख्य लक्ष्यों में मानव निर्माण, स्वराष्ट्र उन्नति, स्वभाषा प्रेम और एकमत स्थापना को रखा था। उन्होंने पौराणिक शिक्षा पद्धति की संकीर्ण विचारधारा को मिटाकर मानव मात्र के लिए एक समान शिक्षा का उद्घोष कर व्यक्ति, भारतीय समाज तथा देश की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया।[2]

वस्तुतः शिक्षा ही जीवन का प्रथम स्तम्भ है। दयानन्द मानते थे कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति अपनी उन्नति की दिशा निर्धारित कर सकता है। जब तक अधीत ज्ञान व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंग न बन जाए तब तक वस्तुओं को जानने और समझने का कोई अर्थ नहीं है। यदि मनुष्य ज्ञान के साथ उस ज्ञान का आचरण भी कर ले तो यह शिक्षा उसके जीवन का महान स्तंभ सिद्ध हो सकती है।[3]

उन्नीसवीं सदी में जो शिक्षण संस्थाएं भारत में संचालित हो रही थी एवं ब्रिटिश सरकार और मिशनरियों द्वारा जो स्कूल–कॉलेज स्थापित किये जा रहे थे दोनों ही प्रकार की संस्थाएँ न तो समय के अनुकूल थी और न भारतीय संस्कृति के अनुकूल। अतः भारतीय समाज को एक ऐसी शिक्षा पद्धति की आवश्यकता थी जो विद्यार्थियों में भारतीय

वैदिक संस्कृति को जीवित रख सके, उनको भारतीय कला, साहित्य, भाषा एवं परम्पराओं से अवगत कराने के साथ–साथ नवीन ज्ञान–विज्ञान और आधुनिकता से भी जोड़ सके। ताकि शिक्षा के क्षेत्र में जो स्त्री–पुरूष और अमीर–गरीब में भेदभाव किया जाता था उसको मिटाया जा सके,जातिगत भेदभाव को खत्म किया जा सके।

भारतीय पुनरुत्थान का आधुनिक युग 19वीं शती के दूसरे चरण में शुरू हुआ। पुनरुत्थान के लिए न अंग्रेजी राज्य की अपेक्षा थी और न अंग्रेजी शिक्षा की। उसके लिए एक ऐसे व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जो सबसे पहले अपनी अंतर्दृष्टि से अपने देश, समाज, जाति तथा राष्ट्र के व्यापक और सामूहिक जीवन की जड़ता, विडंबना,गतिरुद्धता, उसके अन्याय और शोषण को गहराई से देख सके । उनके कारणों की ऐतिहासिक, यथार्थ तथा सांस्कृतिक खोज करने में समर्थ हो सके और अंततः अपनी विवेक दृष्टि से गतिरोध को दूर करके समाज को मौलिक सर्जनात्मक शक्ति से संचालित और प्रेरित करने में समर्थ हो सके । इसी वातावरण में दयानन्द ने जन्म लिया था।[4]

दयानन्द ने भारत की तत्कालीन दयनीय परिस्थितियों में सुधार लाने के लिए शिक्षा को सशक्त माध्यम के रूप में माना। इसीलिए उस समय प्रचलित शिक्षा पद्धति में प्राचीन भारतीय वैदिक शिक्षा पद्धति को सम्मिलित करके नवीन शिक्षा पद्धति प्रस्तुत की जिसमें ज्ञान के साथ–साथ विज्ञान को भी समुचित स्थान दिया गया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824–1883) एक महान शिक्षाविद् थे। स्वामी विवेकानंद द्वारा 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना के लगभग 22 साल पहले और राजा राममोहन राय द्वारा 'ब्रह्म सभा'(जो बाद में 'ब्रह्म समाज' के रूप में विकसित हुई) की स्थापना के 47 साल बाद स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 में बंबई (वर्तमान मुंबई) में आर्य समाज की स्थापना की थी। शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का उत्प्रेरक मानते हुए उन्होंने 'लड़कों और लड़कियों' दोनों को समान रूप से कला, विज्ञान तथा तकनीकी कौशल की शिक्षा देने पर बल दिया, ताकि उनके मानसिक क्षितिज को व्यापक बनाया जा सके, उनकी जन्मजात क्षमताओं को उजागर किया जा सके और उनके सद्गुणों का विकास किया जा सके।[5]

दयानन्द के सामने चुनौती थी, पर चुनौती की शक्ति का और उसके स्रोत का उन्हें ठीक अंदाजा नहीं था, अतः उनके पास उस चुनौती का सामना करने के लिए अपनी ही सांस्कृतिक परंपरा में अंतर्निहित शक्ति और ऊर्जा के अनुसंधान के अलावा कोई उपाय नहीं था। दयानन्द के गुरु स्वामी विरजानन्द ने आर्ष ग्रंथों और वैदिक संस्कृति की ओर उनका ध्यान आकर्षित करके उनको दिशा प्रदान की। उन्होंने भारतीय दर्शन, धर्म ,अध्यात्म, आचार शास्त्र, साधना का गहरा अध्ययन और अभ्यास किया था। इसके माध्यम से उन्हें भारतीय संस्कृति के मूल धारा की स्वच्छंदता, गतिशीलता और मौलिकता की सही पहचान भी हुई। अपनी संस्कृति के उच्चतम मूल्यों के अनुभव और साक्षात्कार से उनके मन में यह प्रश्न बार–बार उमड़ता–घूमता रहा कि इस महान संस्कृति वाले देश और समाज की पतन अवस्था का क्या कारण है? उनमें जितनी गहरी यथार्थ की पकड़ थी, उतनी ही व्यापक इतिहास और परंपरा को ग्रहण करने की क्षमता भी। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने समाज की प्रक्रिया को समझा, उसके भविष्य की संभावनाओं को पहचाना और फिर उसको एक स्वस्थ और सर्जनशील समाज रचना की ओर उन्मुख करने का प्रयत्न किया।[6]

महर्षि दयानन्द जी ने अपने शिक्षा दर्शन में जो पाठ्यक्रम निर्धारित किया एवं शिक्षा के जिन मूलभूत तत्वों का वर्णन किया उस से ज्ञात होता है कि वे शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन कर शिक्षा को जीवन उपयोगी एवं व्यावहारिक बनाना चाहते थे।[7]

उन्होंने शिक्षा का आरम्भ शिशु के गह से मानते हुए माता को प्रथम गुरु, पिता को द्वितीय एवं इसके बाद आचार्य का महत्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया है। उन्होंने मातभाषा के महत्व पर चर्चा की। उनके अनुसार भाषा के पूर्ण ज्ञान के बिना किसी विषय और शास्त्र की पूरी जानकारी नहीं हो सकती। उन्होंने व्याकरण पर विशेष बल दिया जिससे शुद्ध भाषा का ज्ञान हो। संस्कृत भाषा के ज्ञान को उन्होंने आवश्यक बतलाया। भाषा के बाद वे साहित्य पर बल देते हैं। उनके मतानुसार साहित्य के अध्ययन से मानवीय भाव उद्वेलित होते हैं, जोकि मनुष्य के विकास के लिए आवश्यक है। उन्होंने साहित्य को भली प्रकार समझने के लिए काव्यशास्त्र का अध्ययन आवश्यक बतलाया। पिंगलाचार्य कृत छन्दोग्रन्थ, मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि के अध्ययन को उपयोगी बतलाया जिससे दुर्व्यसन दूर होता है तथा उत्तमता एवं सभ्यता का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने दर्शन, उपनिषद्, वेद, पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, योग, सांख्य, न्याय, वेदान्त आदि के अध्ययन पर उन्होंने बल दिया। उन्होंने गुरुकुल में रहकर शिक्षा ग्रहण करने के लिए सुझाव दिया। उनका अभिमत था कि विद्यार्थियों के आवास एकान्त स्थान में चार कोस गांव या नगर से दूर होना वातावरण अध्ययन में बाधक न हो।[8]

दयानन्द ने सह–शिक्षा का समर्थन नहीं किया। उनका विचार था कि बालक और बालिकाओं के आश्रम पथक होना चाहिए। दयानन्द ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को श्रेष्ठ बतलाया। वे चाहते थे कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को स्थापित कर प्राचीन शिक्षा पद्धति को जीवन और नया रूप प्रदान किया जाये। उन्होंने शिक्षा काल में वैभव, ऐश्वर्य से दूर मानसिक और शारीरिक ब्रह्मचर्य को प्राथमिकता देकर शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति पैदा की थी।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भी ऐसी ही क्रांति एवं अनुशासन की आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली की बात करें तो आधुनिक शिक्षा के बहुत से दोषों का निवारण गुरुकुल शिक्षा पद्धति से संभव है।

दयानन्द ने वेदों के प्रामाण्य पर ही यह घोषित किया कि जो हमारे विवेक को स्वीकार्य नहीं, उसके त्याग में हमें एक क्षण का विलंब नहीं करना चाहिए। यदि वेदों में ज्ञान के बदले अज्ञान है, मानवीय उच्च मूल्यों के बजाय घोर हिंसा–वत्ति, भोगवाद और स्वार्थ की उपासना है तो उनको अस्वीकार कर देना चाहिए। पर उन्होंने गुरु के द्वारा दिखाये गये मार्ग पर चलकर वेदों की व्याख्या के लिए आर्ष व्याकरण ग्रन्थों का मन्थन किया। उन्होंने निघंटु, निरुक्त, अष्टाध्यायी और महाभाष्य जैसे व्याकरण ग्रन्थों के आश्रय से वेद मंत्रों की सुसंगत और व्यवस्थित व्याख्या प्रस्तुत की। इस दृष्टि से गहन अध्ययन करने के बाद उन्होंने घोषित किया कि वेद, वैदिक साहित्य और अन्य आर्ष ग्रन्थ ही प्रामाण्य है उनमें सत्य–ज्ञान सुरक्षित है, उनमें भारतीय संस्कृति के उच्चतम मूल्य सुरक्षित हैं और ये मूल्य भारतीय समाज और व्यक्ति के जीवन के सभी पक्षों को मौलिक सर्जनात्मक शक्ति से गतिशील करने में सक्षम रहे हैं। उनका मानना था कि असत्य से समझौता कर के सत्य का प्रकाश करना कभी संभव नहीं। स्वामी दयानन्द यह समझते थे कि कोई भी प्राचीन संस्कृति की परंपरा से जुड़ा हुआ समाज अपने अंतर्वर्ती ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व से नितांत विच्छिन्न होकर गतिशील नहीं हो सकता, वह नए मूल्यों की उपलब्धि में सक्षम नहीं हो सकता। इस दृष्टि से उन्होंने नई समाज रचना के लिए, नए मानस के भारतीय संगठन के लिए और नई सर्जन क्षमता से सक्रिय होने के लिए व्यक्तित्व को वैदिक संस्कृति के आधार पर प्रतिष्ठित किया।[9]

वैदिक शिक्षा की विशिष्टता है कि इसमें सत्य पर अधिक बल दिया गया है। विद्यार्थी के जीवन से उसके दुर्गुणों व दुर्व्यसनों को दूर

करने के लाभ से परिचय कराया जाता है। प्रातः 4 बजे उठकर शौच, वायुसेवन व व्यायाम से आरम्भ कर ईश्वर का ध्यान–संध्या–उपासना, तदन्तर अग्निहोत्र– यज्ञ व दिन में सभी आवश्यक विषयों का अध्ययन कराया जाता है। सन्ध्या व ध्यान इसलिये किया जाता है कि हमारे दुर्गुण हमसे दूर होकर ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव हमारे जीवन में प्रविष्ट हों। गुरूकुल व वैदिक शिक्षा का विद्यार्थी शुद्ध शाकाहारी भोजन जिसमें गोदुग्ध व फल आदि भी होते हैं, ही करता है। आज हम समाज में पढ़े लिखे लोगों द्वारा असत्य व्यवहार, दुष्टता, अनाचार, दुराचार, व्यभिचार, भ्रष्टाचार आदि के अनेक उदाहरण देखते हैं। इसका बहुत बड़ा कारण बाल्यावस्था में बच्चों को उचित ढंग से संस्कार न दिया जाना है। यह ऐसा ही है कि कोई किसी अविद्वान से अध्ययन कर विद्वान बनना चाहे। शिक्षा एकांगी न होकर सर्वांगीण होनी चाहिये। हमें वर्तमान शिक्षा एंकागी लगती है और वर्तमान शिक्षा और वैदिक शिक्षा का समन्वित रूप ही सर्वांगीण प्रतीत होता है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता है। सार्वभौमिक उच्च स्तरीय शिक्षा वह है जिससे देश की समृद्ध प्रतिभा और संसाधनों का सर्वोत्तम विकास हो एवं इसका उपयोग व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की भलाई के लिए किया जा सके। भारत द्वारा 2015 में अपनाए गए सतत विकास एजेंडा 2030 के लक्ष्य 4 (एसडीजी 4) में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास एजेंडा के अनुसार विश्व में 2030 तक सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवन–पर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने का लक्ष्य है। इस तरह के उदात्त लक्ष्य के लिए संपूर्ण शिक्षा प्रणाली को समर्थन और अधिगम को बढ़ावा देने के लिए पुनर्गठित करने की आवश्यकता होगी, ताकि सतत विकास के लिए 2030 एजेंडा के सभी महत्वपूर्ण लक्ष्य प्राप्त किए जा सके।

अनुसंधान और परिणामी पारिस्थिति में तीव्र गति से आ रहे परिवर्तनों की वजह से यह जरूरी हो गया है कि बच्चे को जो कुछ सिखाया जा रहा है, उसे तो सीखें ही और साथ ही वे सतत सीखते रहने की कला भी सीखें। इसलिए शिक्षा में विषयवस्तु को बढ़ाने की जगह बल इस बात पर अधिक देने की जरूरत है कि बच्चे समस्या समाधान और तार्किक एवं रचनात्मक रूप से सोचना सीखें, विविध विषयों के बीच अंतसंबंधों को देख पायें, कुछ नया सोच पाएं और नयी जानकारी को नए और बदलती परिस्थितियों या क्षेत्रों में उपयोग में लाएं। जरूरत है कि शिक्षण प्रक्रिया शिक्षार्थी केन्द्रित हो, जिज्ञासा, खोज, अनुभव और संवाद के आधार पर संचालित होती हो और समता और समन्वित रूप से देखने–समझने में सक्षम बनाने वाली और अवश्य ही रुचिपूर्ण हो। शिक्षा शिक्षार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास करे इसके लिए पाठ्यक्रम में विज्ञान और गणित के अलावा बुनियादी कला शिल्प, मानविकी, खेल और सेहत, भाषाओं, साहित्य,संस्कृति और मूल्य का अवश्य ही समावेश किया जाये। शिक्षा से चरित्र निर्माण होना चाहिए। शिक्षार्थियों में नैतिकता, तार्किकता,करुणा और संवेदनशीलता विकसित होनी चाहिए और साथ ही उन्हें रोजगार के लिए सक्षम बनाना चाहिए।[10]

इस प्रकार देश में 34 वर्षों बाद आई नई शिक्षा नीति 2020 इस बात का संकेत है कि राष्ट्र में परिवर्तन लाना हो तो शिक्षा नीति में परिवर्तन आवश्यक है।

उन्नति का मूल मन्त्र यही है कि सभी लोगों के लिए एक समान व सत्य मूल्यों पर आधारित ऐसी शिक्षा जिससे देश के सभी मनुष्यों का पूर्ण बौद्धिक, मानसिक व आत्मिक विकास हो । यह सिद्धान्त धर्म, ज्ञान व विज्ञान सभी क्षेत्रों पर लागू होता है। अत्यधिक स्वतन्त्रता व इसके नाम पर कुछ भी करने की छूट किसी को नहीं होनी चाहिये। हर कार्य मर्यादित हो और उसकी उपेक्षा व उल्लघंन दण्डनीय हो । यदि ऐसा होता है तो हमें सच्चरित्र, देश भक्त व समाज का सुधार करने की भावना रखने वाले बड़ी संख्या में युवा आगे आ सकते हैं जिससे देश पुनः अपने गौरव में स्थान को प्राप्त कर सकता है।आधुनिक शिक्षा की सबसे बड़ी कमी संस्कारहीनता है। छात्रों में अच्छी आदतों का विकास नहीं हो पाता वे मूल्यहीन, संस्कारहीन शिक्षा प्राप्त करते हैं जिससे उनके व्यक्तित्व एवं गुणों का विकास उचित रूप से नहीं हो पाता। राष्ट्रीय जागरण के प्रणेता दयानन्द ने भारतीय शिक्षा को भारतीय बनाने, अंग्रेजी के स्थान पर मातभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने और अंग्रेजी पद्धति पर चलने वाले विद्यालयों के स्थान पर भारतीय पद्धति पर चलने वाले गुरुकुलों और डी०ए०वी० विद्यालयों की स्थापना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जिस समय दुनिया ने विद्यालयों की कल्पना भी नहीं की थी, उस समय भारत में विश्वविद्यालय हुआ करते थे। विश्व स्तरीय नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय और विक्रमशिला विश्वविद्यालय की पावन धरती पर शिक्षा व्यवस्था में विसंगतियाँ अपरिहार्य है।अतः हमें व्यवस्थागत आवश्यक मुद्दों पर ध्यान देने व उन्हें नियोजित करने की आवश्यकता है।

उच्च शिक्षा में सुधार हेतु 1986 में रोजगारोन्मुखी नई शिक्षा नीति भी लाई गई, किन्तु उसका क्रियान्वयन प्रभावी रूप से नहीं हुआ। नैसकॉम और मैकिन्से के ताजा शोध के मुताबिक मानविकी में 10 में एक और अभियंत्रण में डिग्री प्राप्त चार में से एक भारतीय विद्यार्थी ही नौकरी पाने योग्य है। राष्ट्रीय मूल्यांकन व प्रत्यापन परिषद् (नैक) का शोध बताता है कि इस देश के 90 फीसदी कॉलेजों एवं 70 फीसदी विश्वविद्यालयों का स्तर बेहद कमजोर है। स्वतंत्रता के बाद 50 सालों में 44 निजी संस्थानों को डीम्ड विश्वविद्यालयों का दर्जा मिला। पिछले 16 वर्षों में 69 और निजी विश्वविद्यालयों को मान्यता दी गई। शिक्षा के वैश्वीकरण के इस दौर में महंगे कोचिंग संस्थान, किताबों की बढ़ती कीमत, डीम्ड विश्वविद्यालय और विद्यार्थियों में सिर्फ सरकारी नौकरी पाने की एक आम अवधारणा का पनपना आज की उच्च शिक्षा की अहम चुनौतियाँ हैं। इस उपभोगतावादी संस्कृति ने हमें 'स्व' से अलग कर दिया है। इस शिक्षा पद्धति का शरीर तो सक्षम है, पर आत्मा कमजोर है। इसकी आत्मा की कमजोरी को दूर करना होगा। युवा पीढ़ी के अंदर चहुँमुखी विकास के अवसर उपलब्ध करवाने होंगे। युवा के मन–मस्तिष्क और हाथों में ऐसा समन्वय स्थापित करना होगा कि वह नौकरी न मिलने पर इस सुंदर समन्वय द्वारा स्वरोजगार से अपने जीवन को सफल बना सके। हमें गुणात्मक शिक्षा को प्रोत्साहित करना होगा। शिक्षा की परिभाषा में व्यापक परिवर्तन करने होंगे जिससे शिक्षा उपयोगी और लक्ष्य आधारित हो। सम्प्रति भारत में जो शिक्षा पद्धति प्रचलित है उसके कई पक्षों में सुधार की आवश्यकता है। हमारी शिक्षा व्यवस्था पर एक वहद जनसमूह को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व है, परंतु साधन और संसाधन बहुत सीमित हैं, परिस्थितियाँ भी अनुकूल नहीं फिर भी हम लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर प्रयत्नशील रहें और दृढ संकल्प के साथ आगे बढ़ें तो इस निराशाजनक स्थिति से उबर सकते हैं। अगर कुछ चुनौतियों की बात करें तो ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी, जो व्यक्ति को समाज में स्थान दिला सके। आज औद्योगिक क्रांति के कारण नए भारतीय समाज का निर्माण हो रहा है जिसमें कई शाश्वत मूल्यों का धीरे–धीरे लोप होता जा रहा है। भौतिक सम्पन्नता तो आई है, परंतु नैतिक मूल्यों का हास हो गया है या वास्तव में, हम शिक्षा के मूल मर्म से दूर हो गए हैं। शिक्षा की प्रासंगिकता की बात की जाए तो दयानन्द के समय उन्नीसवी सदी में जो शिक्षण संस्थाएं भारत में संचालित हो रही थी एवं ब्रिटिश सरकार और मिशनरियों द्वारा जो स्कूल–कॉलेज स्थापित किये जा रहे थे दोनों ही प्रकार की संस्थाएँ न तो समय के अनुकूल थी और न भारतीय संस्कृति के अनुकूल अतः भारतीय समाज को एक ऐसी शिक्षा पद्धति की आवश्यकता थी जो विद्यार्थियों में भारतीय वैदिक

संस्कृति को जीवित रख सके, भारतीय कला, साहित्य भाषा एवं परम्पराओं से अवगत कराने के साथ–साथ नवीन ज्ञान–विज्ञान और आधुनिकता से भी जोड़ सके। ताकि शिक्षा के क्षेत्र में जो स्त्री–पुरूष और अमीर–गरीब में भेदभाव किया जाता था उसको मिटाया जा सके जातिगत भेदभाव को खत्म किया जा सके। [11]

जहाँ दयानन्द का भारतीय समाज का ज्ञान अधिक गहरा था, और उनका भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का अध्ययन अधिक पूर्ण माना जा सकता है। दयानन्द में प्रखर प्रतिभा और गहरी अंतर्दृष्टि थी। साथ ही उनमें मानवीय संवेदना की बहुत व्यापक और आंतरिक क्षमता थी। इसलिए घर से बाहर निकलने के बाद लगभग 24 वर्ष उन्होंने देश के स्थान स्थान पर घूमने में बिताए और सारे भारतीय जन समाज का बहुत व्यापक अनुभव प्राप्त किया। अपनी सूक्ष्म संवेदना के कारण उनको भारतीय समाज के जीवन का यथार्थ ज्ञान हो सका।

वस्तुतः वैदिक संस्कृति में स्वस्थ और स्वच्छंद जीवन के ऐसे मूल्यों की प्रतिष्ठा रही है जो व्यक्ति और समाज, व्यक्ति और परिवार, परिवार और समाज, व्यक्ति और राष्ट्र, व्यवहार और अध्यात्म, आत्मा और ब्रह्म के उचित संतुलन पर प्रतिष्ठित हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास की पूरी संभावनाएं समाज की व्यवस्था में समाहित रहे हैं और समाज की गति तथा सर्जनशीलता को सुरक्षित रखने के लिए व्यक्ति दायित्व बोध तथा आत्मानुशासन की प्रक्रिया से अपनी रचनात्मक क्षमता को समद्ध बनाता रहा है।

अतः वैदिक संस्कृति की व्याख्या के माध्यम से स्वामी दयानन्द ने जिन मानवीय मूल्यों की स्थापना की है भारतीय समाज की आधुनिक प्रगति तथा रचना दृष्टि से अनुकूल है।[12]

निष्कर्ष

गुरु विरजानंद ने दयानन्द से यही गुरु दक्षिणा मांगी थी कि भारतीय संस्कृति के ओजस्वी स्रोतों का आर्ष ग्रंथों में अनुसंधान करके भारतीय जनमानस को पुनः आंदोलित और गतिशील करो और इस दिशा को पाकर दयानन्द ने भारतीय शिक्षा एवं समाज के पुनर्जागरण का जो मार्ग प्रशस्त किया और उसके लिए जिन सिद्धांतों और मूल्यों की विवेचना स्थापित कि वे उनकी दिव्य दृष्टि के परिचायक हैं और आज भी ग्रहण करने योग्य है।[13]

आवश्यकता है समय के परिवेश में परिवर्तित हो चुके दयानन्द शिक्षा पद्धति के कालविरुद्ध तत्वों को त्याग कर उन मूलभूत सिद्धांतों को स्वीकार करने की जो मानव निर्माण एवं विकास के लिए अनिवार्य हैं।

सन्दर्भ

1. सहाय,यदुवंश, महर्षि दयानन्द, लोकभारती प्रकाशन,वर्षः 2004] पष्ठ दृ 33]34
2. कुमार, सुरेंद्र (डॉ), महर्षि दयानन्द वर्णित शिक्षा पद्धति (महर्षि के शब्दों में, अनुशीलन सहित), वैदिक अनुसंधान सदन, दिल्ली, प्राक्कथन
3. वेदालंकार, प्रशांत (डॉ), जीवन के पांच स्तंभ, गोविंदराम हसानंद,दिल्ली, प्रथम संस्करण–1983] पष्ठ –7
4. सहाय,यदुवंश, महर्षि दयानन्द, लोकभारती प्रकाशन,वर्षः 2004] पष्ठ दृ 11–14
5. विद्यालंकार, सत्यकेतु, वेदालंकार, हरिदत्त, आर्य समाज का इतिहास(प्रथम भाग), आर्य स्वाध्याय केंद्र, प्रथम संस्करण
6. सहाय,यदुवंश, महर्षि दयानन्द, लोकभारती प्रकाशन,वर्षः 2004] पष्ठ दृ 17
7. दयानन्द सरस्वती, स्वामी, व्यवहारभानु, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, सं1957] भूमिका
8. दयानन्द, स्वामी, सत्यार्थ प्रकाश,आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली 32 वां संस्करण 1985] भूमिका
9. सहाय,यदुवंश, महर्षि दयानन्द, लोकभारती प्रकाशन,वर्षः 2004] पष्ठ दृ 27
10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020] मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पष्ठ–3–5
11. भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष 39] अंक 1] जुलाई 2018] पष्ठ –36]37
12. सहाय,यदुवंश, महर्षि दयानन्द, लोकभारती प्रकाशन,वर्षः 2004] पष्ठ दृ18]28]29
13. वही, पष्ठ –19]20